



अंक 168
मूल्य 25 रुपये

समकालीन भारतीय साहित्य

साहित्य अकादेमी की द्वैमासिक पत्रिका

जुलाई-अगस्त, 2013





समकालीन भारतीय साहित्य

वर्ष 34 : अंक 168 (जुलाई-अगस्त 2013)

5 संपादकीय

कहानी

- 9 जीलानी बानो : भागो... भागो... (उर्दू)
- 14 रामस्वरूप अणखी : सोया नाग (पंजाबी)
- 17 हृदयेश : पापा जात का जीव (हिंदी)
- 30 मुशर्रफ़ आलम जौक्री : अम्मां (उर्दू)
- 38 हुसैन उल हक़ : हरामजादे (उर्दू)
- 41 सातकड़ी होता : अन्नदाता (ओड़िया)
- 49 महिम बरा : शनि (असमिया)
- 58 जिंदर : ग्लोब (पंजाबी)
- 68 ललित मंगोत्रा : हैलो माया (डोगरी)
- 74 बी.एस. बीर : जीवनधारा कॉम्प्लैक्स (पंजाबी)

नाटक

- 80 के.टी. गट्टी : अंधे (कन्नड)

कविता

- 116 सीताकांत महापात्र : वृक्ष संहिता (ओड़िया)
- 121 विष्णुचंद्र शर्मा : माँ की गंधिल कथा / कितने साल हुए बतियाए / खुली आँखों की चमक (हिंदी)
- 123 लीलाधर जगूड़ी : समुद्र, हिमालय और मेरी बातचीत / हर आलाप में बँटी हुई आग (हिंदी)
- 125 हरदयाल : एकोऽहं / आँखें खुली रखनी हैं / गुस्ताख़ आदमी (हिंदी)
- 127 सुधा अरोड़ा : कसाईबाड़ा / लीव मी अलोन (हिंदी)
- 130 सुनीता जैन : बीमार पति से... / तुमने पूछा है / चुप हो गई कविता / मृदंग / कविता का काँटा (हिंदी)
- 133 उपेंद्र कुमार : कितना नया है रूप (हिंदी)
- 134 अंजना वर्मा : माँ / लड़की (हिंदी)
- 136 रजनी मोरवाल : झीनी चदरिया (हिंदी)
- 137 प्रमोद त्रिवेदी : फुर्सत में... (हिंदी)
- 140 ओम नागर : बेकार नहीं हैं हम (हिंदी)

कहानी

असमिया

महिम बरा

शनि

बाँध गाँव के पीछे से जाएगा। बहुत लोगों की ज़मीन जाएगी। ज़मीन जाए तो जाए, रहकर ही क्या फ़ायदा हुआ है? हर साल बाढ़ खेत बर्बाद कर देती है।

बापधन का मन हल्का हुआ। देह की जड़ता भी मानों कपड़ों से झाड़ी गई धूल की तरह निकल गई। क़मीज़ पहनकर गाँव के नामघर के मैदान में होने वाली जनसभा के लिए निकल पड़ा। आज की सभा गंभीर है। डिप्टी कलेक्टर, स्थानीय विधायक, ज़मींदार, पार्टी के नेता और आस-पास के लोग भी आने वाले हैं।

चुनाव की जनसभा की तरह बहुत-से लोग आए हुए हैं। नामघर के सामने वाले बड़े आँगन में लोग इकट्ठे हुए हैं। लोग ऊहापोह में हैं—बाँध चाहिए ही। पिछले बीस सालों से माँग रहे हैं, लेकिन बाँध किस ओर से जाएगा, इसी को लेकर लोगों के बीच वाद-विवाद शुरू हो गया। इसलिए बापधन का दिल धड़क उठा कि अगर बाँध उसके घर के पीछे से नहीं जाएगा, तो उनके पिछवाड़े की दो बीघा ज़मीन हमेशा तीनों भाइयों के लिए सिरदर्द का कारण बनी रहेगी। घर की पीछे वाली ज़मीन कोई भी छोड़ना नहीं चाहता है। ज़मीन को तीन हिस्सों में बाँटकर जब से वे खेती करने लगे हैं, हल चलाना मुश्किल हो गया है। इसलिए तीनों भाई एक-एक करके हल चलाने लगे हैं। कुछ बोये भी तो बाढ़ आकर सब साथ बहा ले जाती। अगर किसी साल बच भी जाए, तो बँटवारे के समय झगड़ा शुरू हो जाता। हर बार गाँव के मुखिया को आना पड़ता है। फिर साल का अंतिम झगड़ा लगान भरने के समय होता है। सामान्य लगान को ही दोनों भाई देना नहीं चाहते हैं। अगर लगान कई वर्षों तक बाक़ी रह गया तो ज़मीन नीलाम हो जाएगी। बापधन को ही

जन्म : 1926। असमिया के वरिष्ठ रचनाकार। कहानी-संग्रह, उपन्यास, कविता-संग्रह की कई पुस्तकें प्रकाशित। साहित्य अकादेमी, असम साहित्य सभा तथा अन्य संस्थानों से पुरस्कृत। संपर्क : अमोलपट्टी, पी.एस. रोड, नगाँव 782001 (असम)

अनु. मनिका शङ्कीया। असमिया-हिंदी में परस्पर अनुवाद। संपर्क : प्रवक्ता, हिंदी विभाग, नगाँव गर्ल्स कॉलेज, नगाँव (असम); मो. 09435784451

अपनी बेब से पैसा भरना पड़ता है। भाइयों के पैसा माँगने पर बाल-बच्चे, औरत—सब झगड़े पर उतर आते हैं।

यह जमीन बिक्री के लायक भी नहीं है और खेती के लायक भी नहीं। वहाँ घर बनवाने का सबाल ही नहीं उठता है। इस बार अगर सरकार बाँध के लिए जमीन ले ले तो मंडल, क्रान्तिगो आदि को कहकर उसका मूल्य बढ़ जाए तो तीनों को कम-से-कम बीस-बीस रुपये तो मिल जाएँगे।

भाषण शुरू हुआ। माननीय विधायक महोदय, गाँव के मुखिया, जमींदार ने एक-एक करके भाषण दिया। लोगों के इतने दिनों के सपने का बाँध, इस सरकार के नए विधायक के प्रयत्न से फलीभूत होने जा रहा है। बहुत जल्द बाँध का काम आरंभ होकर खत्म भी हो जाएगा। लोगों की जमीन का उचित मूल्य भी सरकार देगी। अपने अपने भाषण में लगभग सभी यही बातें बोल रहे थे। सब-डिप्टी कलेक्टर और मंत्री के पास वाली कुर्सियों में स्थानीय जमींदार और गिने-चुने लोग बैठे थे। कुर्सी-मेज जमींदार के घर से ही लाए गए थे। बाक्री लोग घास पर बैठे थे। जिसका ठप-महाकुलाधिपति से परिचय है, उसे अधिक लाभ होगा।

अपने इलाके के मंडल को खोजते हुए बापधन ने झुंड में नज़र दौड़ाई। मंडल जरूर वहाँ आएगा। आज मंडल से मिलकर ही जाना है। सोचकर बापधन इधर-उधर घूमने लगा। एक जगह देखा कि मंडल को घेरकर लोग बातें कर रहे हैं। वैसे तो मंडल उसके दूर का रिश्तेदार है, उसकी ब्याही बहन की ओर से। उससे दो-एक बार मिला भी है। उसके घर भी गया है।

मंडल को घेरे झुंड के पास खड़ा होकर वह मौक़ा ढूँढ़ने लगा। लेकिन लोगों का व्यूह तोड़कर आगे जा नहीं पाया। बापधन ने बीड़ी सुलगाकर मंडल की नज़र खींचनी चाही। अचानक एक बार उनकी आँखें मिलीं। मंडल झुंड से बाहर आया। बापधन के पास आकर उत्सुकता के साथ पूछा, “आप भी आए हैं? आपकी जमीन भी है क्या?”

“जमीन के बारे में क्या पूछते हो? गले का बोझ है। जितनी जल्दी जाए, अच्छा है!”

“जमीन कितनी है?”

“क्या नहीं है। बाढ़ आ जाती है। दो...”

“बस?”

“हाँ! उसका भी तीन भाग।”

मंडल और क़रीब आया। फुसफुसाकर पूछा, “क़ीमती पेड़-पौधे हैं? पान, नारियल...”

“क्या रहेगा, हर साल पानी घुस जाता है!”

“मैं आऊँगा। वैसे पेड़-पौधे दिखाने की कोशिश कीजिए। बाक्री सब मैं देख लूँगा।”

कहकर फिर झुंड में चला गया। देश की ठन्थी से जुड़े ऐसे काम केवल ठेकेदार, इंजीनियर, मंत्रियों से ही नहीं होते, बल्कि मंडल का भी बहुत बड़ा हाथ होता है। ऐसे ही समय मंडल जैसे लोग ‘ग्रामस्थ राजा’ मात्र न रहकर ‘चक्रवर्ती राजा’ बन जाते हैं।

बापधन के अंदर हलचल मच गई। लंबे-लंबे ढग भरता वह घर आ गया।

उसके भाई भी सभा में गए हुए थे। घर के दरवाजे पर ही तीनों परिवार मिले। वे अपने-अपने पतियों के वापस आने के इंतज़ार में खड़ी थीं। तीनों भाई हालाँकि एक ही घर में रहते

हैं, आँगन भी एक ही था, फिर भी कोई किसी की ओर नज़र उठाकर नहीं देखता। यहाँ तक कि बच्चे भी नहीं बोलते। इस जमीन की वजह से ही पिछले छह महीने से ऐसा चल रहा था। लेकिन जब से बाँध की बात चली, उनके मन का बाँध भी मानों धीरे-धीरे टूटने लगा था। यहाँ तक कि तीसरे पक्ष या चौथे किसी के भी माध्यम से बातें शुरू हो गई। अपने-अपने घर के पीछे वाले दरवाजे से जेटानियाँ बातें करने लगीं। बच्चों ने भी धीरे-धीरे लुका-छुपी खेलना शुरू कर दिया। बाँध की सभा का समाचार जानने की उत्सुकता लिए खड़ी औरतों में से मैझली वाली ने मौनता भंग करके जैसे खुद ही कहा, “अलग हुए आज दस बरस हो गए। जब इकट्ठे थे तो गरम-गरम भाप निकलता हुआ भात खाया करते थे। अलग होने के बाद दो जून का खाना भी नसीब नहीं होता! छह महीने तक पेट बाँधकर रहना पड़ता है। अब अगर ईश्वर की इच्छा से सरकार की बुद्धि ठीक रही और बाँध हमारे पीछे से जाए तो घर का ‘शनि’ दूर हो जाएगा। दो पैसे का मुख भी सबको देखने को मिलेगा। अगर तीनों भाई झगड़ा न करके मिलकर दो-चार पान और नारियल के पेड़ ही लगाते, तो...। चालाक-चतुर लोग बाँध का नाम सुनते ही पिछले साल से ही पेड़-पौधे लगा रहे हैं!”

बातों के साथ ही तीनों परिवार के लोग पास आए। छोटी वाली बहू दो क़दम आगे आकर बोली, “हूँ! अब सब पछता रहे हैं! अलग होकर छोटी-छोटी बातों को लेकर झगड़ा-झगड़ करने में ही दिन गए। हमारे इन्होंने पिछले साल जब पान के लतर लगाए तो हल चलाकर बर्बाद किया था या नहीं?”

यह उक्ति बापधन को लक्ष्य करके ही छोड़ी गई थी। इसलिए बापधन की पत्नी को तीर-सी लगी। दरअसल जंगली तांबुल के दो-चार पेड़ लगाए भी थे। वह धूप में सूखकर मर गए। उसी साल बड़े ने जब हल चलाया तो हल की नोक लगकर पौधे उखड़ गए थे। उसी बात का बतंगड़ बनाकर छोटे ने गाँव के दो-चार लोगों को बुलाकर दिखाया। गाँव वाले भी विश्वास करने लगे। फिर बाद में बापधन ने सच्चाई समझाई तो किसी तरह वह बदनामी से बचे। झूठ को सच बनाना छोटे की पत्नी को खूब आता है। शादी के बाद से ही बापधन की पत्नी यह देखती आई है। इसलिए बात न बढ़ाकर सिर्फ़ इतना कहा, “पत्थर तैराकर लौकी को डुबाने का स्वभाव आज का नहीं है! तांबुल के पेड़ की बात बढ़ा-चढ़ाकर फैलाई, बाद में जब दो-चार ने अपनी आँखों से देखा, तब जोंक के मुँह पर चूना पड़ गया!”

झगड़े की शुरुआत ऐसे ही होती है। उस दिन भी ज़बरदस्त झगड़ा होने ही वाला था कि बापधन आ पहुँचा।

तीनों भाइयों के परिवार को इकट्ठे होते देख, बापधन समझ गया कि पैसे मिलने की उम्मीद से सब इकट्ठे हुए हैं। सहसा चेहरे पर कृत्रिम गंभीरता भरकर बापधन सीधे अंदर आ गया। बेटी ने एक मूढ़ा लाकर आँगन में ही बैठने के लिए दिया। किसी ने चिलम भरकर दी। बाक्री लोग उसके और क़रीब आ गए।

सरकार का सिद्धांत सुनने की इच्छा लिए दोनों बहुएँ घूँघट खींचकर बच्चों के पीछे खड़ी रहीं। सबकी उत्कंठा को चरम सीमा तक पहुँचाकर बापधन चिलम से टुरक-टुरक आवाज़ निकालने लगा। अंत में लंबा कश खींचकर नाक-मुँह से धुआँ निकालकर उसने सिर्फ़ एक ही शब्द निकाला—‘हूँ’। पत्नी को मौक़ा मिला। पूछा, “कौन?”

“इन लैंगेटी बाँधने वालों को और झगड़ा करने दो! बाहर देशी-विदेशी सब धन कमा रहे हैं, ठेका ले रहे हैं, जमीन की खुदाई कर रहे हैं, दुकान खोलकर बैठे हैं और हम पुरखों को दो गज जमीन के लिए मर-कट रहे हैं! आज अगर तीनों भाई इकट्ठे रहते...” अगर एक साथ होते तो क्या करते उसका कोई उचित उत्तर दूँ न पाकर ‘हूँ’ जैसी आवाज निकालकर फिर हुक्का पीने लगा।

तब तक मँझला और छोटा भी आ पहुँचे। बड़े को बीच में बिठाकर सबको झुंड में देखकर वे लोग भी झुंड के पास खड़े रहे। भाइयों को आते देख एक बच्चे के हाथों हुक्का भिजवाकर मँझले को देने का इशारा किया। बड़े भइया के प्रति सम्मान दिखाकर मँझला थोड़ा मुँह घुमाकर पीने लगा। इस बार बापधन की आवाज तीखी हो उठी। सभा में सुने भाषण के स्वर में बोले, “अब भी समय है। कल से बड़े-बच्चे सब निकल पड़ो और जिसको जो मिले उठा लाओ। पेड़ लगाने के काम में लग जाओ। बाँध में काम करने के लिए भी मैं हूँ। मेरे साथ और दस जन निकलेंगे। शरम किस बात की! काम करके खाने में कैसी शरम? पुराने राजा के दिनों में हमारे आदिमियों ने ही रास्ते बाँधे थे, पोखर खोदे थे, रातों-रात गढ़ बाँधकर शत्रुओं से जूझते थे। हूँ...”

हुक्के में लंबी साँस भरकर छोटी बच्ची के हाथों हुक्का बड़े के पास भिजवाकर मँझले ने कहा, “दूसरों के सहारे के बिना ही मैं पूरी जमीन में पौधे रोप सकता हूँ। तीनों परिवार मिलें तो तीन दिन का काम है।”

छोटा दो क्रदम पास आया। चेहरे पर संतुष्टि का आभास न होते हुए भी एक विशेष पुलक से चेहरा खिला हुआ था। वह हुक्का नहीं पीता है। इसलिए खाँसी-जैसी आवाज निकालकर गला साफ करता हुआ आवेग भरे स्वर में बोला, “आज सभा में सुना, एक तांबुल के पेड़ के लिए पाँच रुपये, नारियल पेड़ के लिए पचास से पाँच सौ रुपये तक मिलेंगे। मंडल क्रान्तनगो को हथियाकर एक गज जमीन को एक बीघा दिखाएगा। बहुत लोग दोनों हाथों से पैसा कमा रहे हैं। आज अगर सौ रुपये भी साथ होते तो...आज मंडल को दोनों हाथों से नोट समेटते देखा।”

“मंडल के साथ मैं बात करके आया हूँ। बाहर कुछ मत कहना। बच्चों को भी कहे देता हूँ। जैसा मैं कहूँगा वैसा ही करते जाना। कम-से-कम यह जमीन तीन सौ रुपये ला देगी।”

सभी आश्चर्य से चौंक उठे। बापधन की पत्नी मानों चिल्ला उठी, “तीन सौ! पहले के दाम में होता तो दो जोड़ी बैल या फिर तीन-चार एकड़ खेती की जमीन मिलती। अगर अब भी एक साथ होते तो तीन सौ रुपये लेकर दुकान ही खोल लेते।”

मँझली बहू ने जैसे अपने आप से ही कहा, “इस बार मैं कुछ नहीं सुनने वाली! सरकारी करघा लाऊँगी। करघा ला सकूँ तो तेल-नमक का खर्चा ही निकलता रहेगा।”

छोटी बहू घर के अंदर जाने ही वाली थी कि पैसे का नाम सुनकर उसके क्रदम रुके। थोड़ी देर आवाज में बोली, “मुझे सरकारी करघा नहीं चाहिए। सूत की व्यवस्था की जाए तो असमिया (देशी) करघे में ही गमछा, चदर बुनकर दो पैसे कमा सकती हूँ।”

“तुम लोगों को जो करना हो, करो। दो साल का लगान बाक्री है। दुकान पर भी ऋज है। बच्चों की किताब-काँपी, स्कूल की पोशाक एक जोड़ी भी नहीं है।” मौक़ा देखकर बापधन की पत्नी बोली।

झुंड में इकट्ठे बच्चे हाथों में हाथ धरे रास्ते में दौड़े। फिर वहाँ से दौड़कर अपने-अपने दरवाजे पर पहुँचे। उनके बीच खुशी छा गई। बहुत दिनों के बाद तीनों घर के बच्चे एक साथ खेल रहे थे। वे भी समझ गए थे कि उन्हें बहुत रुपये मिलेंगे।

दूसरे ही दिन से मानों घर में वृक्षारोपण कार्यक्रम शुरू हो गया। केवल बापधन के घर में ही नहीं, उस अंचल में जिसकी भी जमीन से बाँध जाने वाला था, सभी के घरों में ऐसा ही माहौल था। जो लोग पैसा खर्च कर पाए, नारियल के पौधे बाज़ार से लाकर रोपने की व्यवस्था की। जो इस मामले में अक्षम थे, उन्होंने इधर-उधर से फ़ालतू उगे पौधे लाकर लगाए। बापधन के घर के बच्चों का ख़ाली समय का काम था दूसरों की बाड़ी से पान के लतर लाना। लेकिन उसकी भी कमी है। जिसको जहाँ जो भी पौधे मिले, उठा लाते हैं।

आखिरकार मंडल आया। गाँव के एक ओर से जमीन, पेड़-पौधों का हिसाब लगाता हुआ मंडल जब उनके घर पहुँचा, मंडल और बाक्री लोग भौंकवके रह गए—धान इतने घने-घने नहीं बोते! पानी के अभाव में लगभग सभी पौधे मर गए। फिर भी जमीन ही थोड़ा बढ़ाकर फल वाले पेड़ों का हिसाब लगाकर गया।

बापधन के घरवालों का सपना आधा टूट गया। तीन सौ तो दूर, डेढ़ सौ मिलना भी कठिन हो गया। जो मिले सो ठीक! जमीन बेचते तो दो कोरी भी नहीं मिलते। उसमें भी अगर कोई खरीदने वाला मिले तो...।

वैसे ही छह महीने बीत गए। गाँव के पीछे बहुत बड़ा बाँध बाँधा गया ताकि बाढ़ से गाँव बच सके! गाँव के लोगों के पास कोई काम नहीं है। पछिया मजदूर मजदूरी करते हैं, ठेकेदार काम देखता है। गाँव के युवा, अधेड़, बुढ़े मिलकर गपशप करते हैं।

आखिरकार शुभ दिन आया। लोगों को जितने पैसे मिलने की बात हो रही थी, उसका आधा ही मिला। बापधन को छह कोरी यानी एक सौ बीस रुपये मिलने वाले हैं। कुल मिलाकर ठीकठाक लाभ। वैसे तो एक पैसा भी नहीं मिलता। और तो और, वही जमीन घर के लिए ‘शनि’ है। उसके लिए ही हमेशा झगड़ा होता है।

एक दिन तीनों भाई शहर जाने के लिए तैयार हुए। गाँव से और लोग जाएँगे। बापधन गोला से बीस रुपये ऋज ले आया—आने-जाने के खर्चे के लिए। पहले का ऋज रहते हुए भी गोला ने बेझिझक दे दिया। शहर गाँव से चालीस मील दूर है। बापधन अब तक दो-तीन बार शहर गया है। कचहरी में दूसरों की गवाही देने। दोनों भाई भी दूसरों के साथ गए हुए हैं। आधी रात को ही तीनों घर की बहुओं ने उठकर, नहा-धोकर, नामघर में दिया जलाकर अपने-अपने पतियों को नाश्ता करवाया। सुबह छह बजे बस जाएगी। दस बजे तक ऑफिस पहुँच जाना चाहिए। बच्चे भी साथ-साथ जग गए। इतने दिनों की फ़रमाइशें आज पूरी जो करनी थी—किसी को लाल-नीले रिबन चाहिए, किसी को खिलौना-पिस्तौल, किसी को चूड़ियाँ, किसी को क्रमीज़-पेंट और बड़ों के लिए सूत, चोली वगैरह तो हैं ही।

घर से निकलते समय बापधन की पत्नी ने याद दिलाया, "पैसा मँझले के हाथों में रखना।" पति तो बम-भोला है, शहर में जेबकतरों की क्या कमी है? कहीं जेब न काट ले। पत्नी के सामने 'हाँ' न भरते हुए भी बापधन ने पत्नी की सलाह का मन से मान किया। गाँव के दूसरे लोगों के साथ तीनों भाई निकल पड़े।

शहर स्थित भूमि अधिग्रहण कार्यालय के सामने तब तक बहुत लोग इकट्ठे हो चुके थे। ऑफिस के अंदर तक जाने के लिए धक्कम-पेल चल रही थी। दरवाजे पर खाकी पोशाक वाला आदमी भीड़ संभाल रहा था।

किसी को धक्का-मुक्की करते देख उसने कठोर आदेश दिया, "एक बार में सिर्फ़ दो लोग जा सकते हैं। कलेक्टर जी का आदेश है। हम क्या कर सकते हैं!"

अंदर जाने को तैयार किसी ने गुस्से से कहा, "एजमालि पत्रे में चार-पाँच लोगों के नाम होते हैं, दो-दो लोगों के जाने से कैसे होगा?"

"क्या करें, क़ानून की बात है! यहाँ ताक़त या धमकी नहीं चलती। हम तो गुलाम हैं। क्या करें?" सामने खड़े लोगों से समर्थन चाहकर उसने देखा। इतने में झिझककर खड़े बापधन पर उसकी नज़र पड़ी।

बापधन अपनी हैसियत समझकर कह उठा, "बिलकुल सही कहा! देश कैसे चलेगा, क़ानून के अनुसार ही चलेगा न।" कहते-कहते जेब से बीड़ी निकालकर एक उसकी तरफ़ बढ़ाई और खुद भी एक बीड़ी जला ली। चपरासी ने 'नारायण...नारायण' उच्चारकर हाथ जोड़े और कहा, "प्रभु, यह नहीं चलती है। अगर हो तो 'गुवा' (तांबुल पान) ही खिला दीजिए और कभी कोई दे तो सिगरेट पी सकता हूँ।"

बापधन से इशारा पाकर छोटे ने जाकर पास वाली दुकान से एक सिगरेट और तांबुल-पान लाकर बापधन को दिया। खुश होकर चपरासी ने पूछा, "इस बार सब लोगों को बहुत धन मिल रहा है। आप लोगों को?"

"हमारा तो सिर्फ़ चाँदी तीन बीसी। उसका भी तीन भाग।"

"हाय राम! नारायण, नारायण! आप लोगों ने मंडल को कुछ दिया नहीं होगा। कपड़ा देखकर ही लग रहा है, हालत ठीक नहीं है। मंडल, क़ानूनगो को अगर हथिया लेते तो एक बीघा को दो बीघा तो कर ही सकते थे।"

"मंडल हमारे रिश्तेदार ही हैं। लोग कहते हैं, मंडल कुछ नहीं कर सकता है।"

"कराने वाले करा ही रहे हैं! इन दिनों में ही अंदर बैठे उन बगुलों को देखा है ना घटाघट मछली पकड़ रहे हैं!" चपरासी ने फुसफुसाकर कहते हुए ज़ोर से 'नारायण' कहा। थोड़ी देर पहले जो आदमी गरज रहा था, शांत होकर बोला, "भइया, कुछ करो! तीन दिन हो गए!"

"मामला कितने का है?"

"तीन हजार का।"

"पत्रादार कितने हैं?"

"चार।"

"आसान-सा हिसाब है। अंदर वाले बगुलों को तीनगुणा दस-बीस रुपये दे दीजिए। दिखाकर मत दीजिएगा। सीधे चार सौ बीस में फँसाकर जेल भिजवाएगा।" चपरासी ने सलाह दी।

"तो क्या करना पड़ेगा?"

चपरासी ने हाथ बढ़ाकर कहा, "यहाँ डालने से वहाँ मिल जाएगा। देखिए ना, कैसे चील की तरह देख रहे हैं। गला दबाकर निकाल लेगा मुझसे। अगर प्यार से मुझे कोई दो-एक रुपया दे तो ठीक, न दे तो भी कोई बात नहीं! लोगों की सेवा कर रहा हूँ। काफ़ी है।"

उसी हिसाब से पहले वाले चार अंदर गए। मौक़े का फ़ायदा उठाकर बापधन ने भी छोटे के हाथ से दस रुपये लेकर चपरासी के हाथ में थमा दिए।

"नारायण, नारायण, जिनको हजार मिले वे भी देते हैं दस और छह बीसी मिलने वाला भी उदारता से देता है दस। दिल साफ़ लगता है। इस बार आप लोग जाइए। सिर्फ़ अंदर के बगुले को सिगरेट और तांबुल पान का खर्चा दे दीजिए। नहीं तो सिर उठाकर नहीं देखेंगे।" बापधन ने भाई को कहकर सामान मँगाया।

इशारा मिलते ही तीनों भाई अंदर गए। पहले वाले बाबू के सामने जाकर बापधन ने कहा, "सर, नमस्कार!" फिर सामान आगे बढ़ाया। बाबू ने सिगरेट की डिब्बिया से एक सिगरेट सुलगाकर पूछा, "कागज़ात लाए हो?"

बापधन ने झटपट जेब से कागज़ात निकालकर आगे बढ़ाए। सिगरेट पीता हुआ बाबू फिर अपनी लिखाई में जुट गया। बापधन ने जेब से पाँच रुपये निकालकर उसकी तरफ़ बढ़ाए। उसने बाएँ हाथ से नोट ढँककर बापधन का बिल तैयार किया।

एक टेबल से दूसरे टेबल बढ़ते-बढ़ते बापधन भाइयों के साथ बड़े बाबू के पास पहुँचा। उनके पास काफ़ी भीड़ थी। बापधन के बाद आए लोगों ने भी फटाफट कागज़ात निकालकर, बड़े बाबू के दस्तख़त लेकर कलेक्टर के कमरे में गए। लेकिन बापधन के कागज़ात वहाँ पड़े रहे।

बहुत देर बाद बापधन ने फिर कागज़ात बढ़ाने की कोशिश की तो बड़े बाबू भड़क उठे, "रुकिए, रुकिए! जल्दबाज़ी मत कीजिए। देख रहे हैं ना, कैसे काम करना पड़ रहा है। अपने कागज़ात अपने पास रखिए।"

बापधन कागज़ात उठा लाया। बड़े बाबू के चपरासी ने उसे इशारे से बुलाकर धीमे स्वर में कहा, "कागज़ात के साथ ही दे क्यों नहीं देते हो? देखा नहीं, लोग क्या कर रहे हैं! कैसा बुद्धू...!"

तभी बापधन ने लक्ष्य किया कि लोग कागज़ के नीचे दस-दस का नोट दे रहे हैं। बापधन का इशारा पाकर भाई ने दस का नोट रखा। बड़े बाबू की चील नज़र ने देख लिया। उस पर कागज़ सावधानी से पकड़कर नोट गोद में रखा और कागज़ पर निगाह डाली। उस पर दस्तख़त करके बापधन को दिया। कागज़ लेकर बापधन खुद कलेक्टर के पास गया। वहाँ से टोकन लेकर जब निकला तब कचहरी की घड़ी में बारह की घंटी बज चुकी थी।

बड़े बाबू का चपरासी उसके पीछे-पीछे आया और कहा, "देखा, मेरे कहे अनुसार आप काम न करते तो आज आप लोगों का काम ही नहीं होता!"

दरवाजे पर खड़े आदमी ने कहा, "उसे देने से ही हो जाएगा? उसे दस दिया।"

"सर्वनाश! उसे इतना क्यों दिया?"

"नहीं तो अंदर जाने ही नहीं दे रहा था।"

"दो रुपये में ही काम हो जाता! अब जो हुआ सो हुआ।"

जेब टटोलकर बापधन ने एक रुपया निकालकर चपरासी को देते हुए कहा, "लो, चाय पी लेना!" रुपया हाथ में लेकर चपरासी ने कहा, "जल्दी कीजिए, स्टेट बैंक यहाँ से एक मील है। रिक्शे से जाइए, नहीं तो आज नहीं मिलेगा!"

स्टेट बैंक के सामने बहुत भीड़ थी। क्या करना चाहिए किसी को नहीं पता। पहले आए हुए को भी पैसे नहीं मिल रहे थे। ऑफिस से फ़ाइल अभी तक नहीं आई थी।

बापधन ने अचानक भीड़ में मंडल को देखा। उसे देखते ही बापधन को ऐसा लगा मानों स्वर्ग मिल गया। "आप पहले मिल जाते तो इतना नहीं भरना पड़ता! अब जो करना है कीजिए।"

लबोराम मंडल जवान है। रंग थोड़ा-सा काला, लंबा कद। जितना हो सके उनकी सहायता की है नहीं तो तीन बीसी से ऊपर रुपये नहीं मिलते। अब आकर रुपये बर्बाद हो रहे हैं, सुनकर उसे दुःख हुआ।

बापधन से टोकन लेकर मंडल काउंटर की तरफ बढ़ा। उसके जाने-पहचाने लोग थे, वहाँ। यथासमय रुपये मिल गए। नक़द एक सौ बीस रुपये, छह बीसी।

तभी सबको ध्यान आया कि भूख और प्यास लगी है। मंडल को लेकर पास की ही चाय की दुकान में गए। कोयले का चूल्हा बाहर ही था। मिट्टी के गिलास में गरमागरम चाय मिल रही थी। चारों ने चाय और चमुचा लिया। मिठाई अच्छी नहीं थी। चाय पीते समय ही मंडल की जेब में बापधन ने दस-दस के दो नोट रख दिए थे। मंडल ने चौंककर कहा, "इतने ज़्यादा पैसे दूसरों को देने में ही चले गए! क्या करते हो!" मंडल ने बापधन को पैसे वापस करने की कोशिश की।

"आपने बहुत सहायता की!" तीनों भाइयों ने विनती की।

"सहायता कर ही क्या पाया! आप लोग तो अपने ही हैं।" लबोराम मंडल को अफ़सोस हुआ। सोचा था, रिश्तेदार हैं, कहाँ पैसा मिलेगा, नहीं तो हिसाब और बढ़ा सकता था।

चाय के साथ-साथ मंडल के सामने ही पैसे का हिसाब लगाया। वापस जाने का किराया अलग रखने के बाद एक-एक को पच्चीस रुपये मिले। बाज़ार जाकर बच्चों के लिए सस्ती चीज़ें ले जानी पड़ेगी।

मंडल को दूसरा काम था, वह चला गया।

सामनेवाले पेड़ के नीचे बहुत लोग आराम कर रहे थे। कोई बीड़ी पी रहा था, कोई तांबुल खा रहा था। बापधन भी भाइयों के साथ जाकर वहाँ बैठ गया। उसने पहली बार

चारमीनार सिगरेट खरीदकर पी। बाज़ार की तरफ़ क़दम बढ़ाए ही थे कि अचानक पास ही शोर हुआ। पैसा लेने आया हुआ एक आदमी बैंक के बरामदे में ही गिरकर 'मर गया...मर गया' कराहता हुआ लुढ़ककर चिल्लाने लगा। बहुत से लोग इकट्ठे हो गए। कोई पानी पिला रहा था, कोई उसे उठाने का प्रयास कर रहा था। बापधन भी भाइयों के साथ वहाँ गया। मँझले ने झुंड में जाकर उसे उठाने में मदद की। इतने में रोगी के किसी परिचित ने आकर रोगी को झुंड से बाहर निकाला। मँझले भी उसके साथ-साथ गया।

"मेरा परिचित है। बवासीर की बीमारी है। अभी अस्पताल ले जाना पड़ेगा!" जाते-जाते वह कहता गया। दोनों ने मिलकर रोगी को रिक्शे पर बिठाया। साथ वाला व्यक्ति भी साथ हो लिया। रिक्शा वाला उसके निर्देशानुसार आगे बढ़ा।

लोग फिर अपने-अपने काम में लग गए। बापधन भी अपने भाइयों के साथ बैंक परिसर से बाहर आ गया। अब बाज़ार जाकर कुछ खरीदना था। बाज़ार के पास पहुँचते ही सरुधन, यानी मँझले ने अचानक पथ के बीच में ही एक अजीब-सी आवाज़ निकालते हुए पीछे मुड़कर भाइयों को देखा।

दोनों मँझले के पास पहुँचे।

"जेब देखो, जेब! जेब कतर...!"

"हाँ! क्या!" दोनों का पॉकेट ठीक ही मिला। मँझला लुट गया था।

"इसे ही कहते हैं 'भानुमती को खेल', शहरी धूर्त! तो वह रोगी गिरहकट था!"

मँझले के मुँह से निकला, "इसकी भी जेब काट ली?"

"मुझे शक हुआ ही था। मैंने जेब से हाथ छोड़ा ही नहीं था।" बापुकन, यानी छोटे ने कहा।

सहसा दोनों के प्रति सरुधन के हृदय में ईर्ष्या की आग भड़क उठी। अगर सभी का जाता तो कोई किसी पर हँस नहीं पाता। आज घर जाकर क्या हाल होगा उसका?

"शायद औरों की भी काटी होगी!" बापधन ने समझाते हुए कहा।

"ज़रूर। बहुत लोग उसकी देख-रेख के लिए गए थे।" जेब में हाथ रखकर सरुधन ने कहा।

बापधन ने सड़क के किनारे जाकर एक बीड़ी जलाई। धीरे-धीरे धुआँ छोड़कर कहने लगा, "सुनो, हम तीनों सगे भाई हैं। झगड़ा करने पर भी कोई किसी को छोड़ नहीं सकता। अगर मेरे भी तो व्रत रखना पड़ेगा। यह ज़मीन ही शनि थी। आज से हमारा शनि गया। रुपया-पैसा तो हाथ का मैल हैं, आएगा-जाएगा। हम दोनों के हिस्से को ही तीन हिस्सों में बाँट लेंगे।"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं है, ये रहे पैसे!" छोटे ने पैसे बड़े के हाथों में थमा दिए।

"घर और गाँव में कहना—इतने ही पैसे मिले। बच्चों के लिए एकाध सामान खरीदकर बाक़ी पैसे से तीनों परिवार मिलकर प्रीति भोज खाएँगे और जितना बाक़ी रहेगा, पिताजी की श्राद्ध में लगाएँगे।"

बापधन के विचार का दोनों ने समर्थन किया।